प्रेमचंद के उपन्यासों में चित्रित पारिवारिक विघटन की समस्या

डा० विश्वम्भर पाण्डेय
एसोसिऐट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
सनातन धर्म महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर

सारांश

समाज की मूलभूत इकाई परिवार है, जिसका संगठन आदिम है। जिसमें स्नेह, सहयोग, सद्भाव और समानता की भावना का धीरे–धीरे विकास होता गया। किन्तु पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्वफ एवं आर्थिक विकास ने इस संगठनात्मक संस्था को क्रमशः नुकसान पहुँचाया। प्रेमचंद ने अपने अनेक उपन्यासों में इन विघटनकारी स्थितियों का चित्रण किया है। उनका स्वयं का पालन–पोषण संयुक्त परिवार में हुआ था, जहाँ पर्याप्त रूप से पारिवारिक कलह और पारस्परिक ईर्ष्या–द्वेष था जो मध्यवर्गीय जीवन का अभिन्न अंग रहा है। चाहे 'प्रेमाश्रम' के जटाशंकर और प्रभाशंकर हों, 'रंगभूमि' में ताहिर का परिवार हो या सूरदास और मिठुआ का सम्बन्ध हो, या 'गबन' में विधवा रतन की बात हो, या 'कर्मभूमि' के अमरकान्त और समरकान्त हों सबमें विद्वेश का कारण कहीं–न–कहीं आर्थिक गतिविधियाँ हैं, जो परिवार के विघटन का कारण बनती हैं। 'गबन' उपन्यास में तो होरी की दुर्गति का कारण उसका अपना भाई ही होता है, फिर भी होरी तमाम कश्टों और जलालतों के बावजूद (परिवार को अलग्योझा के बावजूद) एकजुट रखने की कोशिशें करता रहता है, क्योंकि रक्त–सम्बन्ध से बढ़कर और कौन–सा सम्बन्ध हो सकता है।

महत्वपूर्ण शब्द

संयुक्त परिवार, मध्यवर्ग, संस्कृति, विघटन, खुदमुख्तार, पाश्चात्य सभ्यता, विशाल आत्मा।

शोध पत्र का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है:

डा० विश्वम्भर पाण्डेय,

''प्रेमचंद के उपन्यासों में चित्रित पारिवारिक विघटन की समस्या''

शोध मंथन,
सितम्बर 2017,
पेज सं0 164–169
http://anubooks.com/?page_id=581
Artcile No. 23

समाज की मूलभूत इकाई परिवार है। असामाजिकता से निजात पाने के लिए ही मनुष्य ने पारिवारिक संगठन को आकार दिया है। यह संगठन कुछ इस प्रकार के मानवीय आधारों पर अवलम्बित है जिसे विश्व के प्रत्येक समाज का अभिन्न अंग माना जा सकता है। इस रूप में परिवार एक प्राकृतिक संगठन है जिसे मनुष्य ने अपने जीवन को सुखी और सामाजिक बनाने के लिए स्वीकृत किया है।

प्राचीनकाल में कबिलाई कुटुम्ब हुआ करते थे जो हमारी आदि पारिवारिक इकाइयाँ थीं। जिसमें स्नेह, सहयोग, सद्भाव और समानता की भावना का धीरे–धीरे विकास होता गया। वर्ण–व्यवस्था और जाति–प्रथा की भाँति संयुक्त–परिवार प्रणाली भी हिन्दू समाज का अनिवार्य हिस्सा रहा है। 'संयुक्त परिवार संयुक्त संगठन के आधर पर निकट के नातेदारों, रिश्तेदारों की एक सहयोगी व्यवस्था है, जिसमें सम्मिलित सम्पत्ति, सम्मिलित वास, अधिकारों तथा कर्त्तव्यों का समावेश होता है।'[1] पंडित जवाहरलाल नेहरू के अनुसार–'पुराने हिन्दुस्तानी सामाजिक संगठन की दो खास बातें थीं, एक खुदमुख्तार गाँवों का होना, और दूसरी वर्णव्यवस्था। तीसरी बात थी मिले–जुले खानदान की प्रथा, जिसके सभी लोग आम जायदाद के मिले–जुले हिस्सेदार होते थे... इस मिली–जुली जायदाद में खानदान के सभी लोगों का हिस्सा समझा जाता था– चाहे वे कमाते हों, चाहे न कमाते हों।... हिन्दुस्तान में मिले–जुले कुबुम्ब का रिवाज तेजी से टूट रहा है, और शख्सी नजरिये पैदा हो रहे हैं और इसका नतीजा यह हो रहा है कि न केवल महज जिंदगी की आर्थिक पृष्ठभूमि में तबदीलियाँ हो रही हैं, बल्कि आपस के व्यवहार के सिलसिले में नये मसले खड़े हो रहे हैं।'[2]

जैसे–जैसे भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर पाश्चात्य प्रभाव बढ़ता गया वैसे–वैसे आर्थिक विषमता बढ़ती गई और संयुक्त परिवार धीरे–धीरे विश्रृंखलित होता गया। प्रायः यह पाया जाता है कि परिवार में विभिन्न व्यक्तियों की आय और परिश्रम की सीमा अलग–अलग होती है। अर्थ का अर्जन कुछ व्यक्ति कम करते हैं, कुछ अधिक। परिश्रम और आय की विषमता के कारण अधिक परिश्रम करने वाला व्यक्ति अपने को पृथक करने का प्रयत्न करता है। स्त्रियों का परस्पर ईर्ष्या–द्वेष भी इस विघटन का प्रमुख कारण है। जिसकी बहुत सटीक बानगी हम प्रेमचंद के उपन्यासों में पाते हैं।

साहित्यकार अपने युग का सच्चा प्रतिनिधि होता है। प्रतिनिधि इस अर्थ में कि वह समसामयिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों को प्रभावित करते हुए उससे प्रभावित भी होता है। इस प्रकार स्वाभाविक है कि उसकी तमाम कृतियों में युगीन परिस्थितियों की स्पष्ट झलक (छाप) मिले। प्रेमचंद ऐसे ही एक सजग रचनाकार थे, जिनकी रचनाओं में हम उपर्युक्त सभी परिस्थितियों से परिचित होते हैं। साहित्यकार और उसके युग की परिस्थितियों के संदर्भ में प्रेमचंद लिखते हैं–''साहित्यकार बहुधा अपने देशकाल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असम्भव हो जाता है और 'विशाल आत्मा' अपने देश–बन्धुओं के कष्टों से विकल हो उठती है और उस तीव्र विकलता में वह रो उठता है पर उसके रुदन में भी व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है।[3]

प्रेमचंद ने अपने अनेक उपन्यासों में इन विघटनकारी स्थितियों का चित्रण किया है। उनका स्वयं का पालन–पोषण संयुक्त परिवार में हुआ था जहाँ पर्याप्त रूप से पारिवारिक कलह और पारस्परिक ईर्ष्या–द्वेष था जो मध्यवर्गीय जीवन का अभिन्न अंग रहा है। प्रेमचंद ने मुंशी दयाराम निगम को जून 1905 में लिखे गए एक पत्र में लिखा था–'आप बीती किससे कहूँ। जब्त किए कोफ्त हो रही है। ज्यों–ज्यों करके एक अशरा कटा कि खानगी तरद्दुतात का ताँता बँध ा गया। औरतों ने एक दूसरे को जली–कटी सुनाई। हमारी मखदूमा (स्वामिनी) ने जल–भुनकर गले में फाँसी लगाई। माँ ने आधी रात को भाँपा, दौडीं, उसको रिहा किया। सुबह हुई मैंने खबर पाई, झल्लाया, बिगड़ा लानत–मलामत की। बीबी साहब ने अब जिद पकड़ी कि यहाँ न रहूँगी। मैके जाऊँगी। मेरे पास रूपया न था। लाचार खेत का मुनाफा वसूल किया, उनकी रूखसती की तैयारी की। वह रो–धोकर चली गई।'[4] प्रेमचंद संयुक्त परिवार के हिमायती थे अतः उनके उपन्यासों में संयुक्त परिवार के विघटन का विषादमय चित्रण मिलता है।

' प्रेमाश्रम' के प्रभाशंकर संयुक्त परिवार के पक्षधर हैं। वे अपने भाई जटाशंकर के साथ प्रेम से रहते आए हैं। प्रेमचंद इन दोनों भाइयों के अटूट प्रेम का चित्रण करते हुए लिखते हैं–'स्त्रियों में तू–तू मैं–मैं होती थी, किन्तु भाइयों पर इसका असर न पड़ता था।'[5] गाँव वाले इन दोनों भाइयों की उपमा राम–लखन से देते थे। जटाशंकर की मृत्यु के बाद ज्ञानशंकर हमेशा यही बात सोचते रहे कि कब अपने चाचा से अलग हो जाऊँ। उपन्यासकार के शब्दों में–'अब उन्हें दिन–रात यही दुष्चिन्ता रहती थी कि किसी तरह चाचा साहब से अलग हो जाऊँ। यह विचार सर्वथा उनके स्वार्थानुकूल था। उनके ऊपर केवल तीन प्राणियों के भरण–पोषण का भार था... इलाके की आमदनी का एक बड़ा हिस्सा प्रभाशंकर के काम आता था, जिनके तीन पुत्र थे, दो पुत्रियाँ, एक बहू, एक पोता और स्त्री–पुरुष आप। ज्ञानशंकर अपने पिता के परिवार के पालन–पोशण पर झुँझलाया करते। आज तीस साल पहले वह अलग हो गए होते तो आज हमारी दशा खराब न होती।'[6] प्रभाशंकर संयुक्त परिवार की संयुक्त भावना का निर्वाह करता है, वह निर्धन होते हुए भी प्रेमशंकर को कारावास से छुड़ाने के लिए अपनी संपत्ति गिरवी रखकर ऋण लेता है। ज्ञानशंकर उस पाश्चात्य संस्कृति की उपज है जिसमें परिवार नामक इकाई का क्रमशः लोप होता जा रहा है। जहाँ व्यक्ति ही महत्त्वपूर्ण है। प्रभाशंकर ज्ञानशंकर के लिए कहता है–'यह पश्चिमी सभ्यता का मारा हुआ है, जो लड़के को बालिग होते ही माता–पिता के अलग कर देती है। उसने वह शिक्षा पाई है जिसका मूल तत्त्व स्वार्थ है। उसमें अब दया, विनय, सौजन्य कुछ भी नहीं रह। वह केवल अब अपनी इच्छाओं का, इन्द्रियों का दास है।'[7]

'रंगभूमि' में ताहिर अली की भी कुछ ऐसी ही स्थिति है। ताहिर अली की आय मात्र 30 रूपये थीं उसकी आर्थिक दुर्व्यवस्था को जानते हुए भी जैनब और रकिया अपने लड़कों के लिए दूध ा लेना आवश्यक समझती थीं।[8] पारिवारिक विघटन के मूल में आर्थिक प्रश्न प्रधान रहता है। ताहिर अली की पत्नी कुत्सुम जानती है कि जिन भाई–बन्धुओं को इतना परिश्रमपूर्वक पाला–पोसा जा रहा है, वे स्वार्थ के लिए ही उनके साथ हैं। वह कहती है–'पहले ही समझा चुकी हूँ और अब फिर समझाती हूँ जिनके लिए तुम खून–पसीना एक कर रहे हो, वे तुम्हारी बात भी न पूछेंगे। पर निकलते ही साफ उड़ न जाएं तो कहना।'[9] यह थी मध्यवर्गीय मनोवृत्ति।

प्रेमचंद का खुद का अनुभव भी बहुत कुछ ऐसा ही था। वे स्वयं अपने सौतेले भाई को पच्चीस रूपये प्रतिमाह खर्च के लिए देते थे किन्तु भाई की नौकरी लगने पर उनकी विमाता अलग घर की व्यवस्था करती हैं।[10] ताहिर अली संयुक्त परिवार की मर्यादा की खातिर गबन करता है और कारावास का दण्ड भुगतता है किन्तु इन सब त्यागों के बावजूद उसकी पत्नी के अतिरिक्त उस पर किसी अन्य व्यक्ति की सहानुभूति नहीं रहती। ताहिर अली अपने जिस भाई की पढ़ाई के लिए अनेक कष्ट झेलता है वही कहता है, 'खानदान में दाग लगा दिया। बुजुर्गों की आबरु खाक में मिला दी।'[11] ताहिर अली जिन दिनों कारावास भुगत रहा होता है, माहिर अली दरोगा बनकर अपनी माता के साथ रहकर ताहिर अली के परिवार से अलग्योझा कर लेता है। कुत्सुम निराश्रित होकर अपने बच्चों का पालन–पोषण करती है। कारावास से लौटकर ताहिर अली सोचता है–'वे कष्ट याद आ रहे हैं, जो उन्होंने खानदान के लिए सहर्ष झेले थे। वे सारी तकलीफें, सारी कुरबानियाँ, सारी तपस्याएँ बेकार हो गईं। क्या इसी दिन के लिए मैंने इतनी मुसीबतें झेली थी? इसी दिन के लिए अपने खून से खानदान के पेड़ को सींचा था? यही कड़ुए फल खाने के लिए? आखिर में जेल ही क्यों गया था? मेरी आमदनी मेरे बाल–बच्चों की परवरिश के लिए काफी थी। मैंने जान दी खानदान के लिए। अब्बा ने मेरे सिर जो बोझ रख दिया था, वह मेरी तबाही का सबब हुआ। गजब खुदा का। मुझ पर यह सितम। मुझ पर यह कहर। मैंने कभी नए जूते नहीं पहने, बरसों कपड़ों में थिगलियाँ लगा–लगाकर दिन काटे, बच्चे मिठाइयों को तरस–तरस कर रह जाते। बीबी को सिर के लिए तेल भी मयस्सर न होता था, चूड़ियाँ पहनना नसीब न था, हमने फाके किए, जेवर और कपड़े की कौन कहे, ईद के दिन भी बच्चों को नए कपड़े न मिलते थे, कभी–कभी इतना हौसला न हुआ कि बीबी के लिए लोहे का छल्ला बनवाता। उल्टे उसके सिर के गहने बेच–बेचकर खिला दिए। इस सारी तपस्या का यह नतीजा। और वह भी मेरी गैरहाजिरी में।'[12] यह थी तद्युगीन संयुक्त परिवार व्यवस्था की स्वार्थपरता जो क्रमशः उसे टूटने के लिए मजबूर कर रही थी।

सूरदास का परिवार मात्र दो व्यक्तियों का संगठन है किन्तु उसमें भी आंतरिक कलह और स्वार्थपरता विद्यमान है। सूरदास का व्यवसाय भिक्षा–वर्षत्ति है। दूसरे की गालियाँ सुनकर भिक्षा माँगकर अपने परिश्रम की कमाई से मिठुआ को दूध–रोटी खिलाकर पालन–पोषण करता है। वही मिठुआ समझदार होने पर सूरदास से कहता है–'मेरे लिए तुमने कौन–सी तपस्या की थी, एक टुकड़ा रोटी दे देते थे, कुत्ते को न दिया, मुझी को दिया।'[13]

'गबन' में रतन के विधवा होने के साथ ही उसके सारे अधिकार लुप्त हो जाते हैं उसके पति का भतीजा कहता है–'आपका इस घर पर और चाचाजी की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं। वह मेरी सम्पत्ति है। आप मुझसे केवल गुजारे का सवाल कर सकती हैं... गुजारे के लिए पचास रूपये महीने का प्रबंध मैंने कर दिया है।'[14] यहाँ सम्पत्ति परिवार के विघटन का मुख्य कारण बनती है। साथ ही साथ मणिभूषण की स्वार्थपरता।

'कर्मभूमि' में पिता–पुत्र ही अलग–अलग रहने को बाध्य होते हैं। कारण समरकान्त अपना व्यवसाय अमरकान्त को सिखाना चाहते थे किन्तु अमरकान्त को यह व्यवसाय रुचता या

यूँ कहें कि उसकी जमीर गवाही नहीं देती और अंततः सुखदा के कहने पर दोनों पन्द्रह रूपये का मकान लेकर अलग हो जाते हैं।[15]

'गोदान' में प्रेमचंद पारिवारिक विघटन को दो स्तरों पर प्रस्तुत करते हैं। एक स्तर पर राय साहब और दूसरे पर होरी। राय साहब का अनुभव उनका वर्गीय अनुभव है। होरी से अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए वे कहते हैं–'अरे और तो और, हमारे चचेरे, फूफेरे, ममेरे, मौसेरे भाई जो रियासत की बदौलत मौज उड़ा रहे हैं, कविता कर रहे हैं और जुए खेल रहे हैं, शराबें पी रहे हैं और ऐयाशी कर रहे हैं, वह भी मुझसे जलते हैं और आज मर जाऊँ तो घी के चिराग जलाएँ।'[16]

इससे यह स्पष्ट है कि संयुक्त परिवार का अनुचित लाभ उनके रिश्तेदार (सदस्य) उठाते हैं।

निम्नवर्गीय कृषक होरी का परिवार भी संयुक्त था। वह कभी भी नहीं चाहता था कि उसके परिवार में यह कीड़ा लगे। वह हमेशा परिवार की मर्यादा निभाने के लिए संघर्ष करता रहा। वे तीन भाई हैं– होरी, हीरा और शोभा। उनमें आपसी वैमनस्य है। होरी ने बड़े ही स्नेह पूर्वक भाइयों को पाला–पोसा। बाद में आपस में अलग्योझा कर लेते हैं। ईर्ष्यावश हीरा होरी की गाय को विष दे देता है। हीरा के भागने पर वह पुनिया का पालन–पोषण करता है। हीरा के भागने पर पुलिस उसके घर की तलाशी लेना चाहती है, उस समय धनिया के विरोध के बावजूद ऋण लेकर परिवार की मर्यादा की रक्षा करता है। हीरा जब घर लौटता है उस समय ही होरी की मनोवृत्ति का परिचय प्रेमचंद इन शब्दों में देते हैं–'आज उसकी आँखों में वह हीरा न था, जिसने उसकी जिन्दगी तल्ख कर दी थी, बल्कि वही हीरा था, जो बे–माँ–बाप का छोटा–सा बालक था।'[17] होरी प्रसन्नचित्त हो जाता है। जैसे उसके जीवन में आशा का नवीन संचार हो गया हो। दोनों भाइयों के मिलाप को प्रेमचंद ने अत्यन्त मनमोहक और यथार्थ ढंग से प्रस्तुत किया है, जो संयुक्त परिवार के प्रति उनके मूल भाव को प्रकट करता है।

प्रेमचंद अपने इसी मूल भाव को स्वयं के जीवन में भी संचित करने की कोशिश करते रहे और अपने पात्रों में भी इसी भाव को दर्शाने का प्रयास। निश्चय ही आज ऐसे परिवार कम रह गए हैं, किन्तु जो रह गए हैं या जिन्हें रखा गया है, उसकी उपयोगिता वह परिवार ही जानता है जो इस व्यवस्था का हिस्सा है। यदि थोड़े–बहुत सामान्य कष्ट के बावजूद भी इस संगठन को बरकरार रखा जाय तो यह समाज और देश–हित में ही है।

संदर्भ

1. मुखर्जी, आर. एन.–भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, पृ. 325
2. नेहरू, जवाहरलाल–हिन्दुस्तान की कहानी, पृ. 344–345
3. प्रेमचंद, विविध प्रसंग– भाग–3, पृ. 324
4. चिट्ठी–पत्री–खण्ड–एक, पृ. 3
5. प्रेमचंद, प्रेमाश्रम, पृ. 13
6. वही, पृ. 27

7. वही, पृ. 327
8. प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ. 250
9. वही, पृ. 255
10. शिवरानी देवी, प्रेमचंद घर में, पृ. 37
11. प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ. 444
12. वही, पृ. 560–561
13. वही, पृ. 468
14. प्रेमचंद, गबन, पृ. 229–230
15. प्रेमचंद, कर्मभूमि, पृ. 95
16. प्रेमचंद, गोदान, पृ. 14
17. वही, पृ. 298